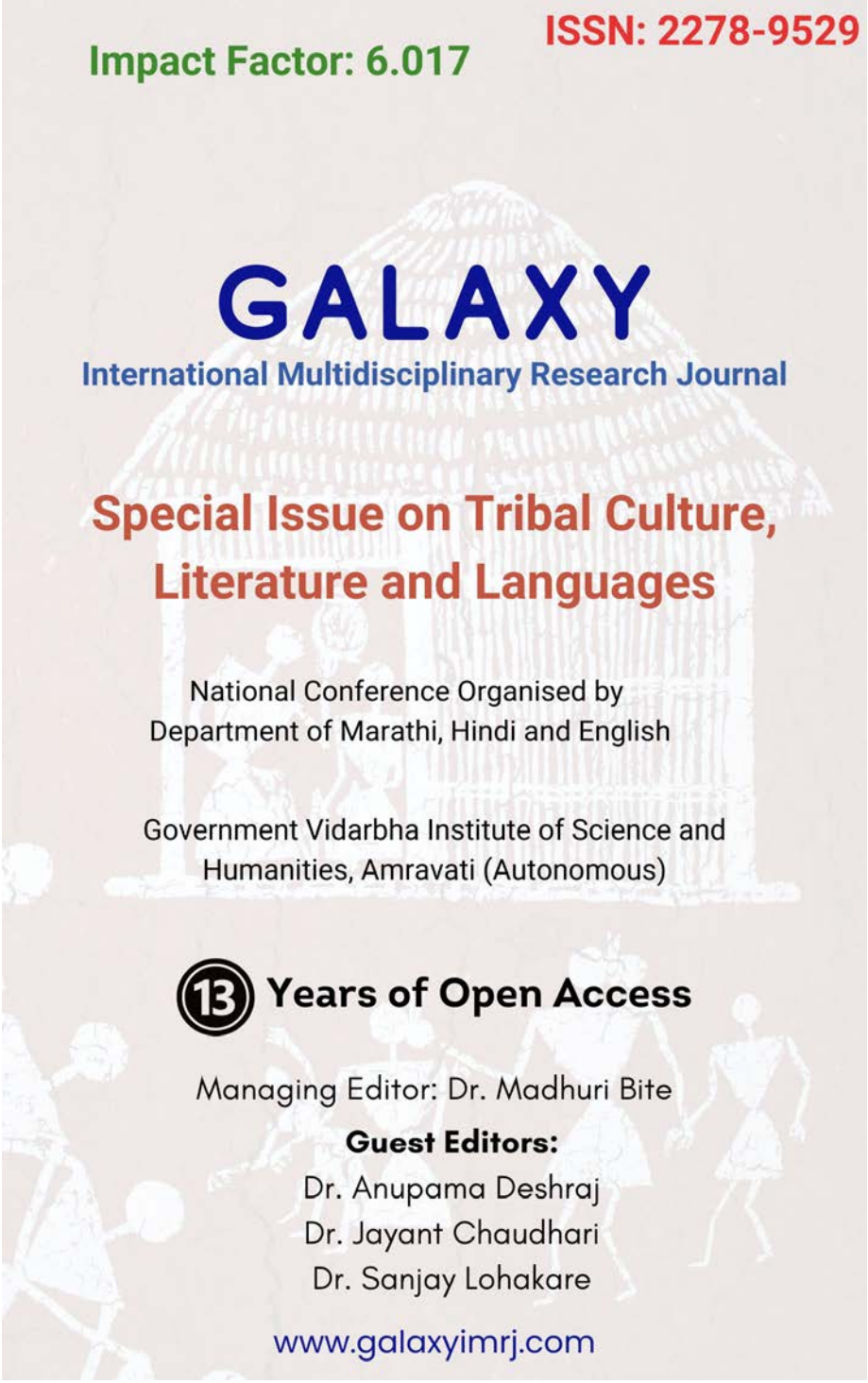

About Us: http://www.galaxyimrj.com/about-us/
Archive: http://www.galaxyimrj.com/archive/
Contact Us: http://www.galaxyimrj.com/contact-us/
Editorial Board: http://www.galaxyimrj.com/editorial-board/
Submission: http://www.galaxyimrj.com/submission/
FAQ: http://www.galaxyimrj.com/faq/

प्रकृति और आदिवासी जीवन

डॉ. पन्नालाल लक्ष्मण धुर्वे
शैक्षणिक समन्वयक (Assistant Prof. Level) (हिंदी),
यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक.

सारांश-

प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग जिसके संरक्षण के बिना मानव का अस्तित्व सुरक्षित नहीं है । वर्तमान विज्ञान व तकनीकी के युग में मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति, औद्योगिकरण, रोड चौड़ी करण, वन संसाधन अतिदोहन व अन्य विकास कार्यों के नाम पर वनों के दोहन की वजह से ऑक्सीजन स्रोत नष्ट हो रहे हैं। कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा मानव व प्रकृति के अस्तित्व के लिए भयानक खतरा पैदा हो गया है। वर्तमान में तेजी से घटते जंगल और बदलते हुए पर्यावरण को बचाने के लिए सदियों से जंगलों के साथ जीवन का संबंध निभाने वाले आदिवासी समुदाय की अहम भूमिका है। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी आदिवासी समूह प्रकृति के अनुसार अपना जीवन व्यतित करते हैं, प्रकृति को ही अपने देवी-देवता के रूप में पूजते हैं। आदिवासी समुदाय प्रकृति को ही अपना धर्म मानते हैं। भारत में लगभग 702 अलग-अलग जनजातियों निवास करती हैं। जल जंगल और जमीन को परंपराओं में भगवान का दर्जा देने वाले आदिवासी बिना किसी दिखावे के जंगलों और स्वयं के अस्तित्व को बचाने के लिए आज भी प्रयासरत है। यह समुदाय परंपराओं को निभाते हुए शादी से लेकर हर शुभ कार्यों में पेड़ों को साक्षी बनाते है। वन संरक्षण की प्रबल प्रवृत्ति के कारण आदिवासी वन व वन्य जीवों से उतना ही प्राप्त करते है जिससे उनका जीवन सुलभता से चल सके व आने वाली पीढ़ी को भी वन-स्थल धरोहर के रूप में दिए जा सके। इनमें वन संवर्धन वन्य जीवों व पालतू पशुओं का संरक्षण करने की प्रवृत्ति परंपरागत है। इस कौशल दक्षता व प्रखरता की वजह से आदिवासियों ने पहाड़ों, घाटियों व प्राकृतिक वातावरण को आज तक संतुलित बनाए रखा है। आज़ादी के बाद से तकनीकी और विज्ञान के युग में संसाधनों के अत्यधिक खनन और कॉरपोरेट्स के हस्तक्षेप व बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के चलते आदिवासियो की बेदखली हुई, विधिक कानून धराशाही होने लगे, आदिवासियो को बुनियादी जरूरतें प्रदान करना, रोजगार, पुनर्वास व उचित मुआवजा प्रदान करना जरूरी है।

प्रस्तावना-

आदिवासी यह शब्द सुनते ही मन में घने जंगल, पेड़ के पत्तों में लिपटकर रहने वाला, पहाड़ीयों के बीच रहने वाला, कठिन जीवन, संसाधनों से दूरी, पिछड़ी व्यवस्था की तस्वीर बनती है। जबकि कई मायनों में देखें तो 21वीं सदी का विकास भी कई बार इनकी परिपक्व सोच, मजबूत परंपराओं के आगे पिछड़ा दिखता है। आदिवासियों ने मरुस्थल में खेती के तरीके खोज निकाले, जलसंकट के बीच भी अपने भोजन के लिए अन्न व्यवस्था कर ली। प्रकृति को नुकसान पहुंचाए बगैर आदिवासियों ने अपने जीवन को हमेशा से सरल और आसान बनाया है। महाराष्ट्र के विभीन्न क्षेत्रों में बसी जनजातियों के बीच भी ढेरों ऐसी ही परंपराएँ हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आ रही हैं। आज राष्ट्रीय परिचर्चा में आदिवासी संस्कृति, साहित्य में हम कुछ ऐसी ही परंपराओं और प्रकृति और आदिवासी जीवन अंतरसंबंध के बारे में जानेंगे।

सांस्कृतिक परंपरा प्रिय और मानवीय मूल्यों के साथ चलने वाला घने जंगल, पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाला व सामाजिक जन के साथ चलने वाला विभिन्न बोली भाषा बोलने वाला परंपरा व प्रकृति के साथ चलने वाला समुदाय यानि आदिवासी समुदाय, आदिवासी यह संकल्पना व्यापक है। इसलिए आदिवासी समुदाय के संदर्भ में जो पूर्व गृह से दूर होकर ही आदिवासी समुदाय की स्थिति और उनके प्रकृति के संदर्भ में क्या विचार है, इसके बारे में विस्तार से जानकारी मिलेगा। आदिवासी समुदाय प्रकृति के साथ रहने के कारण उन्होने अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखा है देवी-देवताओं और धर्म के संबंध में इनकी संकल्पनाएँ अन्य समाज से बिल्कुल अलग हैं, नदी वृक्ष पहाड़ आदि को देव के रूप में पुजा करते हैं। आदिवासी प्रकृति के रक्षक है।

पर्यावरण और प्रकृति को लेकर वर्तमान में विश्व के सभी देशों में चिंता व्यक्त हो रही है। वर्तमान समय में पृथ्वी के बढ़ते तापमान इसका मुख्य वजह मनुष्य है। विकास के नाम पर प्रकृति को नष्ट करने में तुला हुआ है। जिस तरह से पेड़ों को काटा जा रहा है, ऐसे ही चलता रहा तो इसका दुष्परिणाम मानव समाज को भुगतना पड़ेगा। मनुष्य खुद ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है। अगर इसे नहीं रोका गया तो आने वाली पीढ़ी के लिए मनुष्य जिम्मेदार होगा। इसलिए समय और विकास के साथ-साथ प्रकृति को बचाने के लिए नया कदम उठाना होगा उसके लिए उपाय योजना बनाकर पर्यावरण और प्रकृति को किस तरह से बचाया जा सकता। इसके लिए ठोस कार्य नीति को अपनाना होगा जिससे बची हुई प्रकृति की रक्षा हो सके। आदिवासी समुदाय प्रकृति और पर्यावरण को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

जिस प्रकृति और पर्यावरण की चिंता पूरी दुनिया कर रही है। उस प्रकृति और पर्यावरण को सबसे ज्यादा संरक्षक और मित्र कौन है तो वह आदिवासी समुदाय है। जिन्होंने हजारों वर्षों से निरंतर इसका सरक्षण और सवर्धन किया और आज भी कर रहे हैं। क्योंकि प्रकृति से आदिवासी समुदाय का आटूट नाता है जिसके चलते प्रकृति से आदिवासी समुदाय को अलग नहीं किया जा सकता है। जल, जंगल और जमीन के साथ उसका जीवन जुड़ा हुआ है। अगर इन्हें इससे अलग किया तो उनका जीवन ही खत्म हो जाएगा। क्योंकि जल के साथ टहलते हुए जीना, जगलों में जीवन बिताना, मौसम के साथ जीवन को बदलना और प्रकृति के उल्लास में अपनी खुशियाँ अभिव्यक्त करना यही आदिवासी समुदाय की सबसे बड़ी विशेषताएँ और पहचान है। यहाँ तक की उनके प्रत्येक त्योहार, पर्व, उत्सव और सामाजिक जीवन प्रकृति से जुड़ा होता है। सभी आदिवासी समुदाय प्रकृति को अपने देवी-देवताओं के रूप में पूजते हैं। पुजा की पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं, लेकिन प्रकृति के प्रति उनकी आस्था और विश्वास एक ही है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को आदिवासी सर्वप्रथम अपने देवी एवं देवता को अर्पित करते हैं जो विश्व में अनूठा है। भारतीयता के संदर्भ में कहा जाए तो आदिवासी समुदाय की संस्कृति और परंपरा भारतीय ज्ञान परंपरा का सबसे बड़ा उदाहरण है।

कार्यप्रणाली

इस शोध पत्रिका में क्षेत्रीय एवं विवरनतमक शोध पद्धति का प्रयोग की है इसमें प्राथमिक एवं द्वितीय स्रोत की सहायता ली गई है। इसके लिए मेलघाट क्षेत्र नारदु, कोंगड़ा और घोटा आदि गाँव चयन की गई हैं और नादुरबर रबर जिले का वाडक्षेत्र इस गाँव का चयन की है। इसमें कुछ जानकार व्यक्ति से साक्षात्कार द्वारा जानकारी ली गई हैं।

आदिवासी समुदाय की जीवन शैली और प्रकृति-

आदिवासियों की जीवन शैली, उनकी सांस्कृतिक परंपरा, त्योहार, उत्सव पर्व और रहन-सहन से पता चलता है कि वे कितना निश्चल है, उनका जीवन प्रकृति की गोद में रहना, पहाड़ों में घूमना और प्रकृति की पूजा करना। आदिवासी समुदाय प्रकृति के सभी घटकों को जैसे- पेड़-पौधे, धरती, सूर्य, नदियों, जंगल में रहने वाले प्राणी और पहाड़ों का सादर वंदन और पूजा करते हैं। कुछ विशिष्ट पेड़-पौधों आदिवासी समुदाय के लिए महत्वपूर्ण है उसके बगैर उनके कार्य नहीं होते। वे उस पेड़ को काटते नहीं और ना ही उसका उपयोग करते। आदिवासी लोग जल, जंगल, ज़मीन और जानवरों की ही पूजा करते हैं। साथ ही वे सूर्य और चंद्रमा की भी पूजा करते हैं। यह सभी बातें

अलग-अलग जनजातियों के लिए अलग हो सकती हैं। लेकिन इनकी प्रकृति के प्रति श्रद्धा एक है। इनके गीतों में पशु-पक्षियों, जंगल-जमीन और प्राणी का जिक्र भी है। ये इसे अपने परिवार समान मानते हैं और प्रकृति के प्रति जीवंत लगाव है। ये लोग सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रकृति से गहरे जुड़े होते हैं। प्रकृति से जुड़ाव एवं संरक्षित करने की बात इनके गीतों में भी दिखाई पड़ता हैं।

कोरकू सामुदाय की दैनंदिन जीवन प्रकृति पर आधारित है। इस सामुदाय का प्रकृति से अटूट संबंध है, इसलिए कोरकू समुदाय प्राकृति की पूजा करते हैं। यह समुदाय प्रकृति के अनुसार ही वे अपना जीवन यापन करते हैं। प्रकृति में ही वे अपने देवी-देवताओं को देखते हैं। इसलिए यह समुदाय किसी वस्तु या स्थान को अपनी श्रद्धा एवं पूजनीय मानते हैं। कोरकू समुदाय के देवी-देवता प्राकृतिक में ही समाहित होते हैं, जैसे पेड़-पौधे, नदी, नाले, जल, जंगल, पहाड़ी, जमीन आदि सभी का पूजा करते हैं। कोरकू समुदाय के गीतों में प्राकृतिक से संबंधित बातों का वर्णन देखने को मिलता है। इसके अलावा मानव जीवन भूतकालीन स्थिति के जीवन परिस्थिति और मिथकीय के साथ-साथ मानव जीवन के वर्तमान दशा, हर्ष-उल्लास, रहन- सहन आदि का वर्णन भी इनके गीतों में मिलता है। मानवी जीवन की पूरा सार कोरकू समुदाय के लोकगीतों में देख सकते हैं।

कोरकू आदिवासी समुदाय की भवई पूजा, लकड़ी पूजा, खेड़ा पूजा, कोठा पूजा, नागपंचमी, देसरा पूजा, खेयन पूजा, कूला पूजा, पीसा बाबा पुजा, गढ़ापूजा, आदि के रूप में प्रकृति की पूजा करते हैं। कोरकू समुदाय हर साल बारिश होने के बाद जो नए पेड़ पौधे आते हैं उसे गाँव में नहीं लाते हैं। आकड़ी पुजा होने के बाद ही गाँव में ला सकते या उसका उपयोग कर सकते हैं। नए पेड़ इसलिए नहीं लाते की उसे कुछ दिन तक बड़ा होने देते हैं। कोरकू समुदाय भवई त्यौहार में बांस की पूजा करते हैं। इस त्योहार से कोरकू समुदाय का नया वर्ष आरंभ होता है। इस त्योहार में बेदुक का भी पुजा करते है, दूसरे दिन आविवाहित लड़के और लड़किया महुआ या आम के पेड़ के नीचे जा कर पूजा, अर्चना कर हर्ष-उल्लास मनाते हैं। इस तरह यह त्योहार हर साल मनाया जाता है।

मार्च के अंत या अप्रैल प्रथम सप्ताह में चैतरई पर्व मनाया जाता है। इस पर्व के पहले गोंड और कोरकू समुदाय के बुजुर्ग एवं जानकार लोग आम, चिरोजी फल महू के फल खाना तो दूर उसे स्पर्श तक नहीं करते हैं। इसके पीछे बड़ा करण प्रकृति संरक्षण से जुड़ा है। कोरकू समुदाय के भूमका हिरालल भिलावेकर इस बारे में कहते हैं कि आम जब कच्चा होता है तो उसमें चेर यानी बीज नहीं बनता है। पहले खा लेने से आम के पेड़ लगाने के बीज नहीं मिलेंगे। इसी से चेर बनने यानी बीज होने के बाद चैतरई पर्व मनाकर आम और चिरोजी के फल को खाया जाता है। इसके बीज फेंक दिए जाते हैं जो आम का पेड़ बनते हैं। यही कारण हो सकता है मेलघाट के लगभग सभी गोंड

और कोरकू समुदाय के खेतो में आम और चिरोजी पेड़ दिखते हैं। कोरकू और गोंड़ समुदाय में सलाई पेड़ को महत्व दिया जाता है इस पेड़ के बिना इस समुदाय में शादी करना लगभग असंभव है। इस पेड़ को मंडप के बीच में स्थापित कर उस पर साड़ी बांधकर उसकी पुजा की जाती है। होली त्योहार में कोरकू समुदाय द्वारा बाँस को होली बाबा के रूप पूजते हैं। कोरकू और गोंड समुदाय परंपरा में राऊड़ की प्रथा है, जो पर्यावरण और प्रकृति संरक्षण का संदेश देती है। गांव के पास जंगल के एक क्षेत्र को राऊड़ बनाया जाता है। यहां देव स्थापना होती है। यानी क्षेत्र में पेड़ों की कटाई, आग लगाना पूरी तरह प्रतिबंधित रहता है। आज भी राऊड़ के इलाके में प्रवेश पूजा के लिए ही किया जाता है।

गोंड - समुदाय में शादी के समय टेंब्रू और महू पेड़ की पूजा की जाती है। दसवा के समय महू के पेड़ के नीचे पुजा करना। अग्नि को साक्षी मानकर सात फेरे लेने की परंपरा सबने सुनी होगी, मगर मेलघाट के गोंड आदिवासी समुदाय पानी को साक्षी मानकर एक-दूजे के संग रहने की कसमें खाते हैं। गोंड समाज पानी के उपयोग व महत्व के लिए सजग है। जलस्रोतों का संरक्षण भी इनकी परंपरा का हिस्सा है। ये जलस्रोत के आसपास ही बसते हैं। जल को साक्षी मानकर लेते हैं फेरे कोई शुभ काम पानी-पेड़ बगैर नहीं होता। फेरों के दौरान सेमल के पेड़ की पत्तियों से लदी दो टहनियों का होना भी जरूरी होता है। मानते हैं कि इसमें देवी का वास होता है और एक टहनी से 3-4 टहनी तक निकलती हैं, जिसे पूजने की धार्मिक मान्यता समाज में शुरू से है।

गोंड आदिवासी टुंटा पूजन करते हैं। ये आयोजन क्षेत्र में स्थापित सरना में किया जाता है। सरना यानी देवों का क्षेत्र जो असल में पेड़ों का समूह होता है। यहां के कई गांवों में मूर्ति पूजा से दूर रहने वाले आदिवासी पेड़ों को ही अपना आराध्य मानते हैं। पेड़ों का संरक्षण ही इनका ध्येय होता है। जेठ माह के शुक्ल पक्ष पर टुंटा सरना का आयोजन होता है। इसमें खास राग के आधार पर टुंटा गीत बनाया गया है, जिसका आशय इंद्रदेव को मनाना है, जिससे अच्छी बारिश हो सके। ऐसा मानना है कि सरना को नुकसान पहुंचा तो अनिष्ट तय है। धूमधाम से मनाए जाने वाले पर्व में छत्तीसगढ़ के साथ ही झारखंड के विभिन्न गांवों के लोग पारंपरिक वाद्य यंत्र के साथ हिस्सा लेते हैं। मूर्तियां नहीं पेड़ों को ही मानते हैं आराध्य सरना होता है देव-स्थल रात में लाते हैं 7 घाट का पानी गोंड समुदाय के कालु बाबू ऊईके ने बताया कि फेरों के लिए सात अलग-अलग घाटों से पानी लाया जाता है। इसके लिए कुओं, तालाब, नदी जैसे अलग स्थानों का जल रात में लाया जाता है। इस दौरान खास ख्याल रखा जाता है कि जल लेते समय उन्हें कोई देख न ले। मान्यता है कि दिन में किसी के देख लेने से जल अपवित्र हो सकता है। घाटों का पानी... यानी अनुभव सबसे पहले वर-वधु को हल्दी का लेप लगाया जाता है इसके बाद सात घाटों से लाए गए

पानी से भरी सात हंडियों के फेरे लिए जाते हैं। 7 घाटों से पानी लाने का आशय घाट-घाट का पानी पीने की कहावत से है। इसका मतलब ये है कि वर को जीवन की कठिनाइयों का भान है, परिपक्वता के साथ वह कन्या को सुखी रखेगा।

मावची और भील समुदाय- मावची और भील आदिवासी समुदाय का धार्मिक जीवन अनेक देवी देवताओं से तथा भूत प्रेत के साथ जुड़ा है। इन आदिवासी के जीवन में प्रकृति की पूजा की जाती है। लगभग सभी देवि-देवता है, जो प्रकृति से संबंधित है। नंदुरबार जिले के आदिवासी मावची समुदाय की कुलदेवी के रूप में 'देवमोगरा' माता को पूजते हैं। इस देवी को अनाज के रूप में पूजते हैं। उसी प्रकार भील आदिवासी समुदाय में ऋतुमान के अनुसार देवताओं की पुजा की जाती है जिसमें पालूड्योदेव, उजाड्योदेव, वाग्देव, खेतवाल, खलपुजा आदि देवता कृषि से संबंधित होने के कारण खेतों में ही इनकी पुजा की जाती है। लेकिन वर्तमान समय में मावची व भील समुदाय में हिंदू और क्रिश्चन धर्म का प्रभाव हो रहा है जिसके कारण अपने संस्कृति से कटते जा रहे है।

कोलाम और पारधी समुदाय- कोलम और पारधी समुदाय की अनेक पर्व त्योहार का संबंध हा प्रकृति से जुड़ा हुआ है।

आदिवासी समुदाय सदियों से जल, जंगल और जमीन के रक्षक रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण, जलवायु की नियमितता, संधारणीय विकास में आदिवासियो का मुख्य योगदान रहा है। पुरातन काल से ही आदिवासी प्रकृति को माता व जल, जंगल, जमीन को भगवान समान मानते रहे है साथ ही वन्य जीवों को परिवार का हिस्सा मानते है। रियासत काल में भी राजाओं ने इनके क्षेत्रों में हस्तक्षेप नहीं किया लेकिन विज्ञान व तकनीकी युग व वर्तमान कॉरपोरेट्स व पूंजीवाद के फलस्वरूप उद्योगपतियो का जंगलों में हस्तक्षेप बढ़ने लगा। संविधान द्वारा बनाए हुए कानूनों की धज्जियां उड़ने लगी है व जनजातियों को मानव तस्करी, बंधुआ मजदूरी सहित कथित नक्सलवाद के आरोप में जंगली से बेघर किया जा रहा है जिसकी वजह से पर्यावरण संरक्षण में होने वाले नुकसान को सम्पूर्ण मानव जगत को उठाना पड़ेगा। आदिवासियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु विधिक उपार्यों को सख्ती से लागू किया जाना जरूरी है। आदिवासी भी इन देश के नागरिक है, अशिक्षा के चलते वे अपने अधिकारों व संवैधानिक उपबंधों से अनभिज है इसलिए उन्हें शिक्षित कर अपने अधिकारों के प्रति सजग करना जरूरी है। आदिवासी हमारे प्रेरणा स्रोत है जो प्रकृति के संरक्षण के लिए सदियों से प्रयासरत है, उनकी वजह से मानवजगत सुकून जीवनयापन कर रहा है, स्वच्छ पर्यावरण के चलते निरोग रह रहा है। आदिवासियो का संरक्षण प्रकृति संरक्षण के समान है, प्रकृति संरक्षण

अच्छे भविष्य के लिए अति आवश्यक है। हमे सतत विकास की अवधारणा को अपनाते हुए सीमित मात्रा में संसाधनों का उपयोग करना चाहिए ताकि भविष्य में पीढ़ियां भी लाभान्वित हो सके।

निष्कर्ष-

अत: निष्कर्ष के रूप में यही कहना चाहता हूँ कि प्रकृति और आदिवासी समुदाय का गहरा रिश्ता है। वे आज भी प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन करने में मानव समाज की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मदद कर रहा है। और प्रकृति को बचाने में आदिवासी समुदाय अहम भूमिका निभा रहे हैं। पारंपरिक रूप से आदिवासी न सिर्फ प्रकृति पर आश्रित रहे हैं बल्कि उसकी रक्षा भी करते आये हैं। आदिवासी समाज ने इस बात को बहुत पहले ही समझ लिया था कि मनुष्य को अगर अगली पीढ़ी के लिए एक बेहतर दुनिया बचा के रखना है तो उन्हें पर्यावरण की रक्षा करनी होगी। और यह आदिवासी ज्ञान उनका जीवन मूल्य बन गया। आज भी तमाम मुश्किलों के बावजूद आदिवासी पीढ़ी दर पीढ़ी पर्यावरण संरक्षण करते आ रहे हैं। दुनिया भर में वन संरक्षण में सबसे बड़ा योगदान आदिवासियों का है, जो परंपराओं को निभाते हुए शादी से लेकर हर शुभ कार्यों में पेड़ों को साक्षी बनाते हैं। आज आदिवासी लोगों पूरी दुनिया को बता दिया है कि पेड़-पौधों का कितना महत्व होता है। आदिवासी लोगों के जीवन मूल्यों से पूरे विश्व को एक सीख मिलती है।

अभिस्वीकृति

इस शोध आलेख पूरा करने में जिन लोगों ने सहयोग की है उन सबका आभार हूँ। उनका नाम निम्ननुसार हैं।

	उत्तरदाता नाम	उम्र	पता
1	हिरालल भीलवेकर	67	ग्राम नारदु, तहसिल धारणी, जिला अमरावती
2	बुराई सेलुकर	65	ग्राम नारदु, तहसिल धारणी, जिला अमरावती
3	कालु बाबू ऊईके	65	ग्राम धावटी तहसील खाकनर जिला बुरहानपुर
4	राकेश गावित	36	ग्राम वाडक्षेत्र तहसिल नवापुर जिला नंदुरबार
5	जीवन सोलंकी	27	ग्राम वास्तापुर तहसील चिखलदरा जिला अमरावती

संदर्भ:-

1. चौरे, नारायण. भारतीय जनजाति कोरकुओं के लोकगीत. नागपुर विश्वभारती प्रकाशन,1989.

2. डुंगडुंगये. सं. जोवाकिम. खड़िया,मुंडा और उरांव संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन. झारखंड झरोखा, 2014.
3. पारे, धर्मेंद्र. कोरकू संस्कार गीत. भोपाल: आदिवासी लोक कला अकादमी, 2004
4. सिन्हा, आदित्य प्रसाद. झारखंड की जनजातीय लोक संस्कृति, पर्व-त्योहार एवं देवी-देवता. दिल्ली : विकल्प प्रकाशन, 2016.
5. गारे, गोविंद. आदिवासी लोककथा. पुणे: कोंटीनेंटल प्रकशन, 2010
6. पेशवे, वैजयती. कोरकू लोकगीत- संस्कृति आणि सौंदर्य. नागपुर: ए. पी. प्रकाशन, 2015.
7. लामखाड़े मा. रा. आदिवासी ठाकर आणि त्यांची लोकगीते. पुणे: पध्यगंधा प्रकशन, 2003
8. जैन, डॉ. संतोष कुमारी. कुरमाली लोकगीत. राँची : प्रकाशन झारखंड झरोखा, 2011